

चित्तवृत्ति की सहज अवस्था है 'योग'

डॉ. बैकुण्ठ नाथ शुक्ल

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष-संस्कृत विभाग

ने.मे.शि.ना.दास (पी.जी.) कॉलेज, बदायूँ

शोधसार: यह शोध पत्र 'योग' को चित्तवृत्ति की सहज अवस्था के रूप में परिभाषित करता है। योग द्वारा मन की चंचल प्रवृत्तियों को शांत कर आत्मिक एकाग्रता प्राप्त की जा सकती है। इस अध्ययन में योग के मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक पहलुओं का विश्लेषण किया गया है। चित्त की वृत्तियों के निरोध से आंतरिक शांति और सहज जागरूकता प्राप्त होती है। पतंजलि के योगसूत्रों के आधार पर चित्तवृत्तियों के नियंत्रण की प्रक्रिया स्पष्ट की गई है। योग मानव-चेतना को सामान्य से परे उच्च स्तर पर स्थिर करने का मार्ग प्रशस्त करता है। आधुनिक तनावपूर्ण जीवन में योग की प्रासंगिकता को रेखांकित किया गया है। योगाभ्यास द्वारा शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक संतुलन प्राप्त किया जा सकता है। इस शोध में योग के व्यावहारिक अनुप्रयोगों पर प्रकाश डाला गया है। निष्कर्षतः, योग चित्त की विक्षिप्त अवस्था से मुक्ति दिलाकर सहजता की प्राप्ति कराता है।

मुख्य शब्द:- योग, चित्तवृत्ति, पतंजलि, मनःशांति, आत्मजागरूकता, योगसूत्र।

हमारे वैदिक अध्यात्म परिवेश में प्राचीनकाल से ही योग एवं उनकी क्रियाओं का विशेष महत्त्व रहा है उसके सिवा हमारी संस्कृति ही अधूरी है। हम अपनी चित्तवृत्तियों का दमन कैसे करें, उसके लिये महर्षि पतंजलि ने स्पष्ट कहा "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।"

योग मूल रूप से आठ अंगों में विभक्त है-

1. यम
2. नियम
3. आसन
4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार
6. धारणा
7. ध्यान
8. समाधि।

इसे ही अष्टांग योग कहा जाता है। त्रेतायुग के महान योगीराज सीयतात सीरध्वज जनक योगियों में सिरमौर थे उन्होंने अष्टांग योगों पर विजय प्राप्त कर लिया था और अष्टांग योगी विदेह कहलाये। वैसे उन्हें इसी कारण से "विगता देहा देहाभिमानः यस्य सः विदेहः" भी कहा जाता था।

ब्रह्मिष्ठ विदेह, जीवन मुक्त विदेह को देह का अहसास नहीं होता तथा मन समाधि के लय विक्षेप को प्राप्त होता रहता है। वे योगाभ्यास के कारण ब्रह्मानन्द में निमग्न रहते। योग

में पारंगत होने के कारण वे संसार में इस प्रकार से रहते जैसे जल में कमल पद्म पत्र की भांति निर्लिप्त निर्विकार जीवन यापन करते। देह रहते विदेह, स्थूल धारण करके सूक्ष्म, योग में भोग, भोग में योग के साथ ही मानव धर्म और राजा का कर्तव्य निर्वाह करना सच्चे माने में योगीराज विदेह ही थे। 'यमादि' योग साधनों के द्वारा श्रद्धापूर्वक अभ्यास चित्त को बारम्बार एकाग्र करते हुये प्रभु में सच्चा भाव रखने, प्रभु की कथा श्रवण करने से समस्त प्राणियों में परमात्मा के प्रतिविम्बयुक्त उस अहंकार के द्वारा सत्य ज्ञान स्वरूप परमात्मा का दर्शन होता है-

त्रसरेणुत्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृताः।

शतमागस्तु वेधः स्यात्तेस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः॥

3//11/7

किसी से बैर न रखने, आसक्ति का त्याग, ब्रह्मचर्य, मौनव्रत और बलिष्ठ (अर्थात् प्रभु को समर्पित किये हुये) स्वधर्म से योगद्वारा जिसे ऐसी स्थिति प्राप्त हो गई है कि प्रारब्ध के

अनुसार शान्त चित्त हो गया है। भगवान् कपिल भी अपनी माता देवहूति को अष्टांग योग एवं सांख्य योग के लक्षण बताते हुये कहते हैं- यथा शक्ति शास्त्रविहित स्वधर्म का पालन करना तथा शास्त्र विरुद्ध आचरण का परित्याग करना, प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तुष्ट रहना, आत्मज्ञानियों के चरणों की पूजा करना, विषय वासनाओं को बढ़ाने वाले कर्मों से दूर रहना, संसार बन्धन से छुड़ाने वाले धर्मों से प्रेम करना, पवित्र एवं परिमित भोजन करना, निरन्तर निर्भय होकर एकान्त में रहना, सत्य बोलना, आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना, मन, वाणी और शरीर से किसी जीव को न सताना, बाहर भीतर से पवित्र रहना। उत्तम आसनों का अभ्यास करके स्थिरतापूर्वक बैठना, धीरे-धीरे प्राणायाम के द्वारा श्वास को जीतना। इन्द्रियों को मन के द्वारा विषयों से हटाकर अपने हृदय में ले जाना।

योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे ।

मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम् ॥

- श्रीमद्भागवत-3/28/1

स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम् ।

दैवालब्धेन सन्तोष आत्मविचरणीर्चनम् ॥

- श्रीमद्भागवत-3/28/2

ग्राम्यधर्मे निवृत्तिश्च मोक्षधर्म इति स्तथा ।

मितमेध्यादनं शश्वद्विक्तक्षेमसेवनम् ॥

- श्रीमद्भागवत-3/28/31

इसमें पहले आसन को जीतें फिर प्राणायाम के अभ्यास के लिये पवित्र देश में कुश मृगचर्मादि से युक्त आसन विछा के उस पर शरीर को सीधा और स्थिर रखते हुये सुखपूर्वक बैठकर अभ्यास करें। आरम्भ में पूरक, कुम्भक, रेचक क्रम से अथवा इसके विपरीत रेचक, कुम्भक और पूरक करके प्राण भार्ग का शोधन करें जिससे चित्त स्थिर और निश्चल हो जाय।

"जिस प्रकार वायु और अग्नि से तपाया गया सोना अपने मल को त्याग देता है उसी प्रकार जो योगी प्राण वायु को जीत लेता है उसका मन बहुत शीघ्र शुद्ध हो जाता है।" (जगद्गुरु स्वामी विदेह महाराज)

अतः योगी को उचित है कि प्राणायाम वातपित्तादि जनित दोषों को, धारणा से पापों को, प्रत्याहार से विषयों के सम्बन्ध को, ध्यान से भगवद्विमुख करने वाले रागद्वेषादि दुर्गुणों को दूर करें। जब योग का अभ्यास करते-करते चित्त निर्मल व एकाग्र हो जाय तब नासिका के अग्रभाग में दृष्टि जमा कर इस प्रकार भगवान की मूर्ति का ध्यान करें।

प्रत्याहारं संसर्गाभ्यानेनानीश्वरान् गुणान् ।

प्राणायामैर्देहोपाधारणाभिश्च किल्बिषम् ॥

- श्रीमद्भागवत-3/28/11

यदा मनः स्वविरजं योगेन मुसमाहितम् ।

काष्ठां भगवतां ध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकनः ॥

- श्रीमद्भागवत-3/28/12

ध्यान के अभ्यास से साधक का श्रीहरि से प्रेम हो जाता है। उसका हृदय भक्ति से द्रवित हो जाता है, शरीर में आनन्दातिरेक के कारण रोमाञ्च होने लगता है, उत्कण्ठाजनित प्रेमाश्रुओं की धारा में वह वारम्बार अपने शरीर को नहलाता है और फिर मछली पकड़ने के कांटे के समान श्रीहरि को अपनी ओर आकर्षित करने के साधनरूप अपने चित्त को भी धीरे-धीरे ध्येय वस्तु से हटा लेता है। जैसे तेल आदि के समाप्त हो जाने पर दीपशिखा अपने कारणरूप तेजसतत्त्व में लीन हो जाती है। वैसे ही आश्रय, विषय और राग से रहित मन शान्त होकर वृत्त्याकार हो जाता है। इस अवस्था में प्राप्त होने पर जीव गुण प्रवाह रूप देहादि उपाधि के निवृत्त हो जाने के कारण ध्याता, ध्येय आदि विभाग से रहित एक अखण्ड परमात्मा को ही सर्वत्र अनुगत देखता है। योगाभ्यास से प्राप्त हुई। चित्त की इस अविद्यारहित लयरूप निवृत्ति से अपनी सुख-दुःख रहित ब्रह्मरूप महिमा में स्थित

होकर परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार कर लेने पर योगी जिस सुख-दुःख के भोक्तृत्व को पहले अज्ञानवश अपने स्वरूप में देखता था, उसे अब अविद्याकृत अहंकार में ही देखता है। जिस प्रकार मदिरा के मद से मतवाले पुरुष को अपनी कमर में लपेटे हुये वस्त्र के गिरने की जरा सी भी सुधि नहीं रहती है उसी प्रकार चरमावस्था को प्राप्त हुये सिद्ध पुरुष भी अपनी देह के उठने बैठने के विषय में कुछ ज्ञान नहीं रहता है।

आज योग के मुख्य स्वरूप को भी तथाकथित योग व्यापारियों ने विकृत कर दिया है। योग के मुख्यतत्त्व "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" का पूर्णरूपेण लोप कर दिया गया है। अब चित्तवृत्तियों के निरोध को समाप्त करने वाला न बताकर मात्र रोग-व्याधि दूर करने तक सीमित कर दिया गया है। योग के आसनों को भी विकृत कर दिया गया है और महर्षि पतञ्जलि के मुख्य योग स्वरूप को नष्ट कर मात्र रोध निरोधक योगासनों का स्वरूप दे दिया गया है। टी.वी. पर भी इन्हीं रोग निरोधकों का जमकर प्रचार किया जा रहा है। अमुक योग करने से अमुक रोग ठीक हो जाता है बस यही प्रचार किया जा रहा है। स्मार्ट फोन तो योगियों का अखाड़ा बन कर रह गया है। कुकुरमुत्ते की तरह तथाकथित नये-नये योगीजन योग सिखा रहे हैं। योग के वास्तविक ज्ञान व लाभ जिससे हमारी चित्तवृत्तियों का निरोध होता है उसे इन तथा कथित योगियों ने लुप्त कर दिया है। ऐसा लगता है योग सिर्फ शारीरिक रोगों को दूर करने का वैद्य है।

अष्टांग योगी जो जीवनमुक्त विदेह हो जाता है। योग-भोग समान रूप से उसे परिलक्षित होते हैं। महात्मा योगीराज सीरध्वज जनक "विदेह" से वास्तविक योग शिक्षा के महत्त्व को भली-भाँति समझा जा सकता है।

अतः योगाङ्गों का जीवन निर्माण में अत्यन्त महत्त्व है। द्रष्टा जीवात्मा का अपने स्वरूप में स्थित होना ही योग का लक्ष्य है। आजकल अगणित औषधियों की भरमार से जनमानस

अत्यन्त दुःखी है, अस्वस्थ है। आयुर्वेद में भी इस ओर ध्यानाकर्षण किया गया है। हठ प्रदीपिका में कहा गया है-

वैद्यः शास्त्रोक्तविधिना कार्यं कुर्यादशेषतः।

कुर्याद्योगं चिकित्सा च ।'

वर्तमान समय में मानसिक अशान्ति तथा विभिन्न मार्गों की औषधियों से संतृप्त लोग योग की ओर आकर्षित हो रहे हैं। योग शब्द संस्कृत भाषा के "युज्" धातु से बना है जिसका अर्थ समाधि की ओर मिलाना है। समाध्यर्थक युज् धातु से करण में "घञ्" प्रत्यय करने पर योग शब्द निष्पन्न होता है। युज्यतेऽनेनेति योगः। कुछ विशिष्ट आचार्यों ने अधिकरण में घञ् प्रत्यय करके युज्यतेऽस्मिन् इस प्रकृत अर्थ में योग का प्रयोग किया है। अतः योग और समाधि को पर्याय के रूप में भी माना जाता है। महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा का संयोग ही योग है। "संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनो।" महर्षि वेदव्यास महाभारत में परमात्मा और आत्मा का ऐक्यस्वरूप योग साध्य है। इसी को समाधि कहा जा सकता है जो योग का साध्य है।

जलमैश्वर्योः साम्यं यथा भवति योगतः।

तथात्ममनमोरेक्यं समाधिरिह भज्यते ॥

आगे चलकर महर्षि व्यास ने भी समाधि के वाचक के रूप में योग को स्वीकार किया है। "योगः समाधिः।" अर्थात् जहाँ या जिस पर सुचारुरूपेण, भलीभाँति समाहित हुआ जा सके, उस समाधि तथा आत्मा और परमात्मा के मेल को योग कहते हैं। विभिन्न परिभाषाएँ स्मरणीय हैं पर प्रमुख परिभाषा प्रस्तुत है। योग दर्शन के अनुसार "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।" अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध करना योग है। मन को शान्त करने के उपाय को योग कहते हैं। इसी प्रकार विभिन्न उपनिषदों में भी योग को परिभाषित किया गया है। यहाँ कठोपनिषद् में उपलब्ध योग की परिभाषा प्रस्तुत है-

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।

बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमं गतिम् ॥

अर्थात् योगाभ्यास करते-करते जब मन के सहित पाँचों इन्द्रियाँ भलीभाँति स्थिर हो जाती हैं, तथा बुद्धि भी एक परमात्मा के स्वरूप में इस प्रकार स्थिर हो जाती है। जिससे उसको परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु का तनिक भी ज्ञान नहीं रहता उससे कोई भी चेष्टा नहीं वनती उस स्थिति को योगीगण परमगति अर्थात् योग की सर्वोत्तम स्थिति को वर्णित करते हैं।

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।

अप्रमत्तस्तु तदा भवति योग, हि प्रभवाप्ययो ॥

अर्थात् इन्द्रिय, मन और वृद्धि की स्थिर धारणा का नाम योग है। ऐसा अनुभवी योगी महानुभाव मानते हैं। क्योंकि उस समय साधक विषय दर्शन रूप सब प्रकार के प्रमाद से सर्वथा रहित हो जाता है। परन्तु यह योग उदय और अस्त होने वाला है। अतः परमात्मा प्राप्त करने की इच्छा वाले साधक को निरन्तर योग युक्त रहने का दृढ़ अभ्यास करते रहना चाहिए।

चरक ने मन का इन्द्रिय एवं विषयों से पृथक् होकर आत्मा में स्थिर होना ही योग वर्णित किया है-

आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां सन्निकर्षात् प्रवर्तते ।

सुखदुःखमनारम्भान्मध्ये मनसि स्थिरे ॥

निवर्तते तदुभयं वशित्वं चोपजायते ।

सशरीरस्य योगज्ञास्तं योगमृषयो विदुः ॥

श्रीमद्भगवद्गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण योग को परिभाषित करते हुए अर्जुन से कहते हैं-"समत्वं योग उच्यते ।" अर्थात् समत्व ही योग कहा जाता है। तथा "योगः कर्मसु कौशलम्" अर्थात् कर्म में कुशलता ही योग है। कर्म की सिद्धि अर्थात् सफलता तथा असिद्धि दोनों में निष्काम भाव के कर्मों को करना ही समत्व है। समबुद्धि युक्त पुरुष पाप और पुण्य दोनों

को इसी लोक में लगा देता है। निष्काम भाव से कर्मों को फल की इच्छा न रखकर कर्तव्य करना योग है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

अमर कोश में भी योग को ध्यान और संगति का वाचक स्वीकार किया है-

"योगः सन्नहोपायध्यानसंगतियुक्तिषु ।"

इस सम्बन्ध में समाधि, संगति, समत्वादि शब्दों को गम्भीरता पूर्वक हृदयंगम करना परमावश्यक है। वस्तुतः चित्त वृत्तियों का निरोध तथा परमात्मा में निरन्तर स्थित होने को समाधि कहा गया है तथा इसका परिणाम संगति या समत्व बुद्धि की प्राप्ति है। सुख-दुःख, मान-अपमान, लाभ-हानि आदि के अवसर उपस्थित होने पर कर्तव्य कर्मों को फल की इच्छा त्याग करना ही समत्व है तथा शरीर के विभिन्न प्रकार के कार्य मन वृद्धि और आत्मा के व्यवहारों में संगति कही जाती है।

योग के परिणाम स्वरूप कहा जा सकता है कि आत्मा की अपने वास्तविक स्वरूप में स्थिति और ज्ञान का उदय तथा कर्म स्वयं क्षीण होकर परमात्मा का साक्षात्कार होता है। योगाभ्यास द्वारा शरीर में हल्कापन, निरोगिता, मनकी स्थिरता शरीर में ओज की वृद्धि तथा रोग-शोक से मुक्ति प्राप्त होती है।

लघुत्वमारोग्यमलोलुप्त्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवञ्च ।

गन्धःशुभां मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥

भूतों पर विजय प्राप्त कर लेने वाले ध्यानयोगी में पूर्वोक्त शक्तियों के अतिरिक्त और भी शक्तियाँ आ जाती हैं। उदाहरणार्थ उसका शरीर हल्का हो जाता है। शरीर में भारीपन या आलस्य का भाव नहीं रहता। वह सदा ही निरोग रहता है। उसे कभी कोई रोग नहीं होता। भौतिक पदार्थों में उसकी आसक्ति नष्ट हो जाती है। कोई भी भौतिक पदार्थ सामने आने पर उसके मन और इन्द्रियों का उसकी ओर

आकर्षण नहीं होता। उसके शरीर का वर्ण उज्ज्वल हो जाना है। स्वर अत्यन्त मधुर और स्पष्ट हो जाता है। शरीर में बहुत अच्छी गन्ध निकलकर चतुर्दिक फैल जानी है। मल और मूत्र बहुत ही स्वस्व मात्रा में होने लगते हैं। ये सब योग कर्म की प्रारम्भिक सिद्धियाँ हैं। ऐसा योगीजनों का कहना है।

योग दर्शन में वर्णन है कि अविद्या का नाश होकर उच्चतम ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। "ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा।" योग की महत्ता के सन्दर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण का कथन है-

तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद् योगी भवार्जुन ॥

अर्थात् योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ हैं, शास्त्र ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ माना गया है और सकाम करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है। इससे हे अर्जुन! तुम योगी हो। योगी तपस्वी बानी और कर्म करने वाले सभी श्रेष्ठ हैं। योग दर्शन के अनुसार आठ अङ्ग निश्चित किये गये हैं।

"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार

धारणाध्यानसमाधयोऽष्टाङ्गानि।"

1. यम अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः।

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रहादि पञ्च यम हैं। इन्हें क्रमशः स्पष्ट करना आवश्यक है-मन-वचन-कर्म से किसी भी प्राणी को पीड़ा न देना तथा सबसे वैर त्यागना अहिंसा है। जैसा देखा हो, जैसा मुना हो और जैसा अपने मन में ही उसको वैसा ही कहना करना और मानना परन्तु वह सत्य मधुर तथा परोपकारक होना सत्य कहलाता है। मन-वचन-कर्म से चोरी का मर्कटा परित्याग, विना आज्ञा किसी की वस्तु को न लेना अग्नेय कहा जाता है। उपस्थेन्द्रिय का संयम तथा वीर्य का रक्षण करना ये सब सामाजिक जीवन को नियन्त्रित करने के लिए है। इसे ही ब्रह्मचर्य कहते हैं।

2. नियम- शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।"

वाह्य आभ्यन्तर की शुद्धि को शौच कहते हैं। मिट्टी और जल से वाह्य शरीर तथा सात्त्विक भोजन सत्य भाषण ज्ञानादि से मन बुद्धि को पवित्र करना होता है इसे ही शौच कहते हैं। किए हुए पुरुषार्थ में ही सन्तुष्ट रहना सन्तोष है। जैसे कुशल सारथी घोड़ों को साधता है, वैसे ही शरीर प्राण इन्द्रिय और मन को वाह्य विषयों से हटाकर योग मार्ग में प्रवृत्त करना तथा द्वन्द्वों को सहना तप कहलाता है। आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन और प्रणव का जप करना स्वाध्याय कहलाता है। सर्वस्व ईश्वर को अर्पण कर देना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।

3. स्थिरं सुखमासनम् अर्थात् स्थिरता और सुखपूर्वक बैठना जिससे ध्यानादि क्रियाएँ निर्विघ्न की जा सकें। उसे आसन कहते हैं।

4. प्राणायाम तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोगतिर्विच्छेदः प्राणायामः।" अर्थात् आसन के स्थिर हो जाने पर और प्रश्नान की गति को रोकना प्राणायाम है।

5. प्रत्याहार- स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।" अर्थात् इन्द्रियों का विषयों से हटाकर चित्त के अनुकूल होना प्रत्याहार कहलाता है।

6. धारणा देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।" अर्थात् चित्त में वृत्तिमात्र एकाग्रता से स्थान विशेष से बांधना धारणा है।

7. ध्यान- "तत्र प्रत्ययेकतानता ध्यानम्।" अर्थात् ध्येय विषय में चित्त की वृत्ति का निरन्तर ही रहना ध्यान कहलाता है। जैसे धारणा में हृदयप्रदेश में बाह्य आकाश को शान्त भाव से देखना अथवा वहाँ सर्वत्र ब्रह्म की ज्योति या प्रकाश को देखना ध्यान कहलाता है।

8. समाधि- तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।" अर्थात् ध्यान करते समय जब ध्याता ध्यान ध्येय में से ध्येय मात्र शेष रह जाता है। तथा आत्मा परमात्मा के स्वरूप में निमग्न हो जाए तो उसे समाधि कहते हैं। अतः इस योग के समस्त अङ्गों का अभ्यास ही योगाभ्यास कहलाता है। हम सबको यह अवश्य करना चाहिए।

आध्यात्मिक विकास में योग अत्यन्त लाभदायक है। भारतीय मनीषियों ने ऐसे ऐसे सिद्धान्त निर्मित किए हैं जिनसे भारत हर दृष्टि से समुन्नत हुआ है इसीलिए समूचे विश्व में इसे आदर से देखा जाता है। योग भी अन्य शास्त्रों की तरह शास्त्र है। एक विद्या है अर्थात् योग एक विद्या है। एक दर्शन है। अतः यह योगदर्शन नाम से भी अभिहित है। यह एक प्रकार का विज्ञान है। विज्ञान होने के पीछे तर्कणा तथा बौद्धिक विचारणाएँ हैं। विज्ञान में धैर्य अन्धविश्वास, ईश्वरीय कृपा, आशीर्वचनों का कथमपि कोई स्थान नहीं है। भारत से योग उत्पन्न हुआ और अनन्तर पाश्चात्य देशों में भी पहुँच गया है। वहाँ योग बहुत उपयोगी प्रतीत हो रहा है। वहाँ योग विषय साहित्य भी अत्यन्त चाव के साथ पढ़ा जाता है। आज व्यक्ति भौतिक उन्नति में प्रसन्न दिखता अवश्य है पर अन्दर से प्रसन्न व आनन्दित नहीं है।

योग से इन्द्रियों की शुद्धि तथा उन पर नियन्त्रण आवश्यक है। उसके बाद चित्त को स्थिर रखना भी है। इन सभी प्रक्रियाओं के लिए हमें योग की शरण में जाना पड़ता है। हठयोग का व्यावहारिक प्रयोग अत्यधिक व्यापक है। आज मानव विशेष विलक्षणताओं के कारण अत्यन्त कठिनतापूर्वक समय निकाल पाता है। आज देखते हैं कि चाहे पुरुष हो या स्त्री बाहर से तो स्वस्थ व आनन्दित दिखाई देते हैं परन्तु अन्दर से बीमार, रोगी या शोकाकुल अशान्त दिखाई देते हैं।

उन्हें प्रच्छन्न गुप्त रोगों ने आवृत कर रखा है। इन छुपी हुई बीमारियों को योग के बल पर ही ठीक किया जा सकता है। योग दर्शन के अनुसार मन शरीर को नियन्त्रित शासित और पूर्णरूपेण सक्रिय करता है। इस प्रकार शरीर मन का एक मन्त्र बन जाता है। व्यक्ति की इच्छाएँ व अभिलाषाएँ मन द्वारा उत्पन्न होती हैं उन्हें पूर्ण करने का कार्य शरीर द्वारा ही किया जाता है। अत्यन्त श्रेष्ठ होने के लिए हठयोग की क्रियाएँ भी अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होती हैं। धौति आदि क्रियाएँ चमत्कारी हैं। अतः धौति वस्ति नौलि त्राटक कपालभाति आदि अत्यन्त उपयोगी हैं-

धौतिर्दस्तिस्तथा नेतिनौलिकिस्त्राटकस्तथा।

कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणि समाचरेत् ॥"

अतः योग करते हुए प्राकृतिक नियमों के साथ शरीर शोधन करना चाहिए। सादा जीवन तथा प्राकृतिक जीवन ही जीना चाहिए योग के साथ प्रातः कालीन भ्रमण, खुली वायु में प्राणायाम आदि से प्राण व शरीर स्वस्थ रहते हैं। अतः आजकल के प्रदूषित वातावरण तथा भागदौड़ से व्यस्तता भरे जीवन में योग और भी अधिक प्रासङ्गिक हो गया है। अतः हम सभी को योग अपना कर अपने जीवन को स्वस्थ तथा समुन्नत बनाना चाहिए।

सन्दर्भ सूची-

1. चरक सूत्र-1/15-16
2. सुश्रुत संहिता-
3. मुण्डकोपनिषद्- 3/2/3
4. घेरण्ड संहिता-1/8-11
5. हठप्रदीपिका अन्तिम श्लोक
6. धातुपाठ
7. व्यासभाष्य-1
8. योगदर्शन-1/2

- | | |
|-----------------------------|--------------------|
| 9. कठोपनिषद्-2/3/10 | 21. योगदर्शन-2/31 |
| 10. कठोपनिषद्-2/3/11 | 22. योगदर्शन-2/32 |
| 11. चरक-शरीर-1/138-39 | 23. योगदर्शन-2/33 |
| 12. श्रीमद्भगवद्गीता-2/48 | 24. योगदर्शन-2/34 |
| 13. श्रीमद्भगवद्गीता-2/50 | 25. योगदर्शन-2/35 |
| 14. श्रीमद्भगवद्गीता-2/47 | 26. योगदर्शन-2/36 |
| 15. अमरकोष-तृतीयकाण्ड-22 | 27. योगदर्शन- 2/37 |
| 16. श्वेताश्वतरोपनिषद्-2/13 | 28. गोरक्षसंहिता |
| 17. योगदर्शन-1/48 | |
| 18. श्रीमद्भगवद्गीता-6/46 | |
| 19. योगदर्शन-2/29 | |
| 20. योगदर्शन-2/30 | |

Corresponding Author: डॉ. बैकुण्ठ नाथ शुक्ल

E-mail: anubaikunth.7375@gmail.com

Received: 11 December, 2024; Accepted: 20 December, 2024. Available online: 30 December, 2024

Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension)

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License

